भारतीय मूर्तिकला एवं चित्रकला का संगीत से सम्बन्ध –एक अवलोकनात्मक अध्ययन

रीमा शर्मा
सहायक प्राध्यापिका
खालसा कॉलेज फॉर वुमैन
सिविल लाईन्स
लुधियाना

षोध सारांष :

भारतीय सभ्यता अपनी प्राचीनता तथा विविधता के लिए विश्वविख्यात है। ललित कलाएं जो कि हमारी संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं, भारतीय सभ्यता का अभिन्न अंग रही हैं। भारत की पूर्वकालीन एवं गरिमायुक्त संस्कृति एवं संगीत का सूत्रबद्ध ऐतिहासिक वर्णन उपलब्ध नहीं है। भारतीय संस्कृति एवं संगीत के ऐतिहासिक दर्षन सर्वप्रथम वैदिक वाड्मय में होते हैं। परन्तु इतिहासकारों की यह मान्यता है कि भारतीय संगीत का विकास वैदिक युग से भी कई वर्षों पूर्व हो चुका था इस बात के प्रमाण हमें कहीं भी ग्रंथों में नहीं अपितु प्रागैतिहासिक सभ्यता सिन्धु और हड़प्पा की मूर्तिकला एवं अति प्राचीन चित्रकलाओं में देखने को मिलते हैं। जैसे–जैसे भारतीय सभ्यता का विकास होता गया साथ ही मनुष्यों में कला अभिव्यक्ति का विकास होता गया। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित 64 ललित कलाओं में से गायन, वादन, नृत्य, मूर्तिकला व चित्रकला को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। साथ ही इन कलाओं के परस्पर आपसी सम्बन्ध के दर्शन भी होते हैं। जब हम संगीत कला की बात करते हैं तो संगीत का मूर्तिकला एवं चित्रकला से घनिष्ठ सम्बन्ध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। भारत के प्रारंभिक इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि मानव ने अपने इर्द– गिर्द घटित हो रही प्राकृतिक परिस्थितयों से ही गायन, वादन, नृत्य सीखा तथा इसका चित्रण मूर्तिकला एवं चित्रकला द्वारा किया। अतएव संगीत, चित्रकला एवं मूर्तिकला का परस्पर सम्बन्ध तभी से ही माना जाता है।

भूमिका :

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि प्रत्येक काल में भारतीय सभ्यता का सम्बन्ध कलाओं से रहा है। प्रागैतिहासिक काल से ही कलाएं भारतीय मानव जाति के जीवन का अभिन्न अंग रही हैं। अर्थात् उनका दैनिक कार्यो में कहीं न कहीं कलाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पूजा–पाठ, पर्व–त्योहार, पारिवारिक व सामाजिक समारोह, उत्सव अन्य अनेकों अवसरों पर किसी न किसी कला का उपयोग होता रहा है।प्राचीन भारतीय ग्रंथों में 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है, जिनका ज्ञान प्रत्येक सुसंस्कृत नागरिक के लिए अनिवार्य समझा जाता था। इसीलिए भर्तृहरि ने तो यहाँ तक कह डाला– 'साहित्य, संगीत, कला विहीन, साक्षात पशुः पुच्छविषाणहीनः।' अर्थात् साहित्य, संगीत और कला से विहीन व्यक्ति पशु के समान है। भारतीय ऐतिहासिक काल को छोड़कर और पीछे प्रागैतिहासिक काल पर दृष्टि डाली जाए तो विभिन्न नदियों की घाटियों में पुरातत्वविदों की खुदाई में मिले असंख्य पाषाण उपकरण भारत के आदि मनुष्यों की कलात्मक प्रवृतियों के साक्षात प्रमाण हैं। पत्थर के टुकड़ों को विभिन्न आकार प्रदान कर भिन्न–भिन्न प्रकार के कार्यो हेतु उनका प्रयोग किया गया। जैसे – हस्तकुल्हाड़ी, खुरचनी, छिद्रक, बोधक, पाषाण उपकरण न केवल रोजमर्रा के कार्यो के लिए उपयोगी थे अपतु कलात्मक अभिव्यक्ति अर्थात् मूर्तिकला एवं चित्रकला में भी उनका उपयोग होता रहा होगा। जब हम भारतीय संस्कृति और कलाओं की बात करते हैं तो उसकी शुरूआत हम प्रागैतिहासिक काल से करते हैं। प्रागैतिहासिक काल से अभिप्राय उस सुदूर एवं अतीत काल–खण्ड से है जिसके सम्बन्ध में किसी सूत्र बद्ध ऐतिहासिक सामग्री की उपलब्धि नहीं होती। भारत की अतीत एवं गौरवमयी संस्कृति का प्रथम ऐतिहासिक दर्शन वैदिक वाड्मय में उपलब्ध होता है। भारतीय संस्कृति का यह सहस्रदल अनेक शताब्दियों के पश्चात् विकसित हुआ है, इसमें सन्देह नहीं। ऐसी ही विशाल प्रागैतिहासिक सभ्यता का निर्दशन सिंधु तथा हड़प्पा जैसे स्थानों में उपलब्ध है।[1] इन सभ्यताओं से प्राप्त अवशेष उस सभ्यता की भौतिक समृद्धि के परिचायक हैं, अपितु उसके चतुर्दिक विस्तार का स्पष्ट संकेत देते हैं। भारत की आदिवासी जातियों की संस्कृति का 'चक्षुवै सत्यम' साक्षात्कार कराने के कारण तत्कालीन संगीतकला विषयक परिस्थित का सम्यक दिग्दर्शन इसके संभाव्य है, इसमें संदेह लेश नहीं।[2]

यह सभ्यता ऋग्वेद से प्राचीन है इस सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। सर मार्षल उसे प्राग्वैदिक मानते हैं और इनके मत का अनुसरण डॉ० मैके, हेवास तथा दीक्षित जैसे पुरातत्वज्ञ करते हैं–राधाकुमुद मुकर्जी। सिन्धु सभ्यता को वैदिक सभ्यता से ही मानते थे।[3] उनके अनुसार ये दोनों परस्पर सूत्र में सुबद्ध है। प्रसिद्ध प्राच्य विद्या विषारद लक्ष्मणस्वरूप ऋग्वेदीय आर्यों को सिन्धु उपत्यका के अधिवासी तथा सिन्धु सभ्यता के षिल्पी मानते हैं।[4]

भारत के उत्तर पश्चिमी भाग में विकसित सैंधव सभ्यता भारत के इतिहास के प्रारम्भक काल में ही कला की परिपक्वता का साक्षात

प्रमाण है। खुदाई में लगभग 1,000 केन्द्रों से प्राप्त इस सभ्यता के अवशेषों में अनेक ऐसे तथ्य सामने आये हैं, जिनको देखकर बरबर ही मन यह मानने को बाध्य हो जाता है कि हमारे पूर्वज सचमुच उच्चकोटि के कलाकार थे।[5]

1922 ई. में पंजाब में मोहन जोदड़ो और हड़प्पा में खुदाइयां हुई। इन खुदाइयों में अनेक वस्तुएं प्राप्त हुई, उनमें श्री शंकर भगवान की तांडव नृत्य करती हुई एक मूर्ति तथा कांसे की बनी नारी की मूर्ति, जिसके एक हाथ में बहुत सी चूड़ियां है और जो नृत्य की मुद्रा में है, उपलब्ध हुई। इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे चित्र भी मिले हैं, जिनमें नृत्य के उत्कृष्ट नमूने भी प्रस्तुत किए गए है। उन खंडहरों पर सांगीतिक चित्र भी मिले हैं।[6] इन अवषेषों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ईसा से 5000 वर्ष पूर्व भारतीय संगीत पर्याप्त रूप से विकसित हो चुका था। ऐसा ज्ञात होता है कि विभिन्न प्रकार के ताल–वाद्यों और वीणा का निर्माण हो गया था। इस प्रकार खुदाइयों से ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि संगीत एवं मूर्तिकला का विस्तार एक साथ ही होता रहा है। मूर्तियों में कई प्रकार के नृत्य मुद्राओं एवं संगीत वाद्यों को दर्शाया गया है जो कि दोनों कलाओं के पारस्परिक संबंध की व्याख्या करते हैं।

जहाँ एक ओर मूर्तिकला एवं संगीत का संबंध सभ्याताओं की खुदाइयों से ज्ञात होता है वहीं संगीत और चित्रकला का सम्बन्ध अजंता शैली में नज़र आता है।चित्रकला के इतिहास पर दृष्टिपात करे तो ज्ञात होता है कि संगीत के साथ चित्रकला का सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल से ही है। भारत की चित्रकला का इतिहास अजंता से आरंभ होता है और वो कोई दो सहस्र वर्ष पुरानी है। छठी शताब्दी की अजंता की चित्रकारी इस बात का साक्षात प्रमाण है कि उस समय संगीत और चित्रकला एक दूसरे के पूरक थे। 'नृत्य लेखन' के लिए अजंता कला आज भी अविस्मरणीय है।

अजंता कला के अध्ययन से ज्ञात होता है इसमें नृत्य की विभिन्न मुद्राओं का संजीव चित्रण करने के लिए संगीत कला का ज्ञान अत्यावश्यक है। अजंता चित्र इस बात को इंगित करते हैं कि उस समय के लोगों में नृत्य एवं चित्रकला के प्रति श्रद्धा और प्रेम की भावना थी। 'अजंता–चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि प्रत्येक पात्र मुद्राओं का धनी होता है। यह सब देखते हुए जी होता है कि अजंता कला को 'मुद्राओं की कला' कहा जाए।[7] परन्तु अजंता शैली में प्रमुखतः नृत्य मुद्राओं के चित्रों के ही दर्शन होते हैं सप्त स्वरों, रागों के चित्रण की चित्र कला के दर्शन नहीं होते।

'अजंता के अतिरिक्त हड़प्पा में उपलब्ध एक चित्र में एक पुरूष को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है।[8] सिंधु एभ्यता की खुदाइयों में दो मुद्राओं पर दीर्घाकार ढोलक अंकित है, जिनके दोनों मुख चर्म से आबद है। अन्य स्थान पर ढोलक आकृति का बाद्या एक मृण्मयी मूर्ति की ग्रीव से लटकता हुआ दिखाया गया है। कोणार्क में विद्यमान एक मूर्ति जिसमें स्त्री मंजीरा बजाती दिखाई देती है। झांझ, अथवा करताल के समान वाद्य भी यहाँ उपलब्ध हैं। ऐसे वाद्यों का प्रयोग सम्भवतः नृत्य की लय को सूचित करने के लिए किया जाता रहा हो।[9] खुदाई में एक ऐसी मुद्रा भी प्राप्त हुई है, जिसमें एक नारी गाती हुई मुद्रा में चित्रित है।[10] खुदाइयों में मूर्तियों के मिले अवशेषों का सम्बन्ध ज्यादातर नृत्य कला से नज़र आ रहा है। चित्रों में भी अधिकतर नृत्य मुद्राओं की अभिव्यक्ति के ही दर्शन होते हैं।

मध्यकाल के भारत में चित्रकारों का ध्यान राग चित्र कला की ओर आकृष्ट हुआ माना जाता है। राग रागिनी पद्धति के प्रचार में चित्र कला का योगदान काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है।राग चित्र स्वरों से उत्पन्न भाव रसों की अभिव्यक्ति है स्वरों की सूक्ष्मता के साथ मन में उत्पन्न होते भावों के आधार पर कल्पना शक्ति के द्वारा रेखा–रंगों से मूर्त रूप प्रदान कर राग चित्रों का निर्माण किया जाता है।Ragmala paintings are a series of illustrative paintings from medieval India based on ragamala or the 'Garland of Ragas'. The concept of illustrating musical modes in pictorial form as Ragamala paintings is a unique expression of Indian writers and artists.[11]

'कुछ समय पूर्व अंग्रेजी में प्रकाशित होने वाली उच्च कोटी की कला–पत्रिका मार्ग में राग चित्रों का प्रकाशन देखकर यह समझने में देर नहीं लगती कि जैन चित्र–शैली में ही राग–चित्रों की रचना का सूत्रपात हो चुका था।[12] The painting depicting a range of musical meloidies known as ragas. Its root word, raga, means color, mood, and delight and the depiction of these moods was a favoured subject in later Indian court paintings. the celebration of music in paintings is a distinctly Indian preoccupation.[13]

राग जैसे सूक्ष्म और गूढ़ विषय के चित्रण के लिए चित्रकला ही विशेष उपयुक्त समझी गई। इस प्रकार के चित्रों का उद्देश्य कोई कथा कहानी नहीं होता, बल्कि रंगों का एक भावमय रूवरूप अंकित करना होता है।अर्थात् राग के स्वरों के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले रसों में डूबकर एक चित्रकार राग के स्वरूप का ध्यान रखते हुए चित्र अंकित करता है। यह चित्र रागों में निहित रस और भाव की अभिव्यक्ति करने में सक्ष्म सिद्ध हुए हैं।

गुजराती शैली के एक चित्र जो 'राग धनाश्री' का है के विषय में वर्णन मिलता है कि इस राग चित्र में राग के वर्णनात्मक रूप के बजाय भावनात्मक रूप की अभिव्यक्ति की गई। 'यह एक वियोगजन्य राग है, अतः उसे परिलक्षित कराने के लिए मतवाला हाथी और नायिका

को हरी–भरी वाटिका से व्यंजित कराकर राग के स्वरूप को विशेष रूप से दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। मस्त हाथी वाटिका को रौंदता हुआ बढ़ रहा है और नायिका उससे पछाड़ खाकर सूनी सेज की ओर लोटने को बाध्य हो रही है। इस प्रकार विवश्तापूर्ण वातावरण पैदा करना ही धनाश्री के स्वरों का गुण है। जिसे जन चित्रकार ने बखूबी उक्त चित्र में दिखाया है।[14]

समय के साथ–साथ बदलती परिस्थितियों में राग चित्रण में भी बदलाव आने स्वाभाविक थे। मध्ययुग राग मालाओं के चित्रण की राजपूत शैली का प्रचार होने लगा। रागमाला संगीत और चित्रकला के घनिष्ठ सम्बन्ध की एक ठोस उदाहरण है।

रागमाला का शाब्दिक अर्थ है रागों की माला। हमारा भारतीय शास्त्रीय संगीत रागों पर आधारित है। राग शब्द की उत्पत्ति ही रंग' से हुई है जिसका अर्थ है रंगना, रंजन करना इत्यादि। इसलिए संगीत में राग का अर्थ मन का रंजन करना अथवा व्यक्ति विशेष को स्वरों से उत्पन्न भावों के रंग में रंगना।

रागमाला के अतिरिक्त रागों के ध्यान चित्रों का उल्लेख भी मिलता है वास्तव में रागमाला चित्र रागों के संगीत कारों द्वारा गाए गये राग के भावों को दृश्य रूप में अभिव्यक्त करते हैं। रागमाला के चित्र 16वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के दौरान राजस्थान में चित्रित किए गये। इतिहास के इन प्रमाणों से भारतीय संगीत के चित्रकला एवं मूर्तिकला से सम्बन्ध का ज्ञान होता है। जिसके दर्शन आज भी अजंता, अलोरा, राजस्थान में होते हैं।

उपसंहार :

हालांकि प्राचीन मूर्तियों एवं चित्रों में गायन संगीत के प्रत्यक्ष दर्षन नहीं होते, उनमें से अधिकतर मूर्तियां एवं चित्र नृत्यकला और कुछेक वादन संगीत के दृष्य प्रस्तुत करती हैं। परन्तु नृत्यकला गायन एवं वादन के बिना असंभव है और साथ ही गायन वादन एवं नृत्य ये तीनों कलाओं संगीत के अंतर्गत ही मानी जाती हैं इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि प्रागैतिहासिक काल में संगीत की इन तीनों विधाओं का विकास हो चुका था और इन का मूर्तिकला एवं चित्रकला से घनिष्ठ सम्बन्ध इतिहास के प्राग्वैदिक काल से ही रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय कला– भारतकोश, ज्ञान का हिन्दी महासागर, bharatdiscovery.org
2. डॉ० शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ–15
3. डॉ० ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, तृतीय संस्करण 2016 पृ० 9
4. डॉ० शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 16
5. डॉ० भगवतशरण शर्मा, भारतीय संगीत का इतिहास, मार्च 2010, पृष्ठ–22
6. डॉ० लक्ष्मी नारायण गर्ग, निबंध संगीत पृष्ठ–382
7. डॉ० शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ–16
8. डॉ० भगवतशरण शर्मा, भारतीय संगीत का इतिहास पृष्ठ–26
9. डॉ० लक्ष्मी नारायण गर्ग, निबंध संगीत पृष्ठ–382
10. Raga mala: Picturing sound, www.metmuseum.org, June 14-December, 2014
11. डॉ० लक्ष्मी नारायण गर्ग, निबंध संगीत पृष्ठ–383
12. डॉ० लक्ष्मी नारायण गर्ग, निबंध संगीत पृष्ठ–383
13. Art of legend India: Art Painting, blog.artoflegendindia.com